कोल देवलोक में समाजबोध

-रुद्र चरण माझी

भूमिका : इतिहासकारों ने “कोल” शब्द की उत्पति के बारे में विभिन्न मत दिया हैं |"कोल" जनजाति भारत वर्ष के सबसे प्राचीन जनजाति है | ये प्रोटो-अस्ट्रोलाइट समूह के अन्तर्गत आती हैं।भाषा वैज्ञानिकों ने समस्त आदिम भाषा, संरचना को लेकर एक रेस या प्रवाह की धारणा प्रस्तुत किए हैं जिन्हें प्रोटो - अस्ट्रोलाइट समूह के नाम से जाना जाता है। इसे कोलारीयन प्रजाति भी कहा जाता है। भारतवर्ष के विद्वानों में इस अवधारणा को लेकर विविध मत है।एक शोध आलेख के अनुसार संभवतः छोटा नागपुर के खडिया द्वारा "मुंडा"लोगों को "कोरारा" नाम दिया गया और कालांतर में यह “कोल” शब्द में परिवर्तित हो गया ।1975 में क्रम्स. डब्लू के अनुसार कोल शब्द मुंडारी भाषा के "हो" या "होरो" शब्द से आया है जिसका अर्थ होता है "आदमी" जो आगे चलकर कोरो, कोल के रूप में परिवर्तित हो गया। वैदेशिक इतिहासकार हेडेन के अनुसार "कोल" छोटा नागपुर के मुंडाओं की एक साखा के रूप में वर्णन किया गया है परंतु शारीरिक गठन और सांस्कृतिक रूप से विभिन्न प्रदेश के “कोल” जनजाति में समानता पाये जाते हैं। ये जनजाति मुंडा,हो,संथाल, आदि जनजाति से मिलते जुलते हैं।“कोल” शब्द की उत्पति और उसके व्यवहार के बारे में प्राचीन काल के साहित्य से विभिन्न शिलालेख के माध्यम से हमें मिलता आ रहा है | कोल समुदाय को प्राचीन जन जाति समुदाय में भारत वर्ष के विभिन्न राज्य में लिपिबद्ध किया गया है |’कोल’ शब्द रामायण ,महाभारत जैसे पौराणिक ग्रंथ में "कोल किरात" के रूप से मिलता तो है ही साथ ही ये शब्द प्राचीन वेदों में भी देखने को मिलता है |कोल समुदाय की सही संख्या कहीं पर उपलब्ध नहीं है |1981 के जनगणना को आधार मानकर अगर हम चलें तो उनकी संख्या मध्यप्रदेश में ही 132232 है [1]| “कोल” समुदाय लगभग 5 शताब्दी पूर्व छोटा नागपुर से मध्य भारत में आए और यह मुख्य रूप से झारखंड, पश्चिम बंगाल, बिहार, असम, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, उड़ीसा और छत्तीसगढ़ में पाए जाते हैं। प्रतिष्ठित अखबार नवभारत टाइम्स के मुताबिक वर्तमान झारखंड में करीब दो लाख कोल जाति के लोग निवास करते हैं। मध्य प्रदेश में लगभग 10 लाख कोल निवास करते हैं, वही उत्तर प्रदेश में इनकी आबादी लगभग 5-7 लाख है. यह उत्तर प्रदेश में सबसे बड़ी जनजाति हैं [2]। यहां यह मुख्य रूप से प्रयागराज, वाराणसी, बांदा और मिर्जापुर जिलों में निवास करते हैं| मध्य प्रदेश, बिहार, झारखंड और छत्तीसगढ़,उड़ीसा में इन्हें अनुसूचित जनजाति के रूप में सूचीबद्ध किया गया है।उत्तर प्रदेश में इन्हें अनुसूचित जाति के रूप में वर्गीकृत किया गया है।1975 में आर. पी. रोसले के अनुसार "कोल" कोलेरियन परिवार की जनजाति है जबकि 1971 में अमीर हसन के अनुसार ये मुंडा परिवार के अंतर्गत आते हैं।मुंडा परिवार के अंतर्गत , भूमिज, तमरिया, जुआंग,परिवार की जनजातियां भी प्रमुख रूप से आते हैं।

कोलों की उद्भव और उत्पति और विकास के बारे में बहुत सारी कथानक प्रचलित है।इस दौरान मैं ओडिशा,झारखंड,बंगाल,मध्यप्रदेश,असम के विभिन्न अंचल का दौरा किया और प्रत्येक अंचल के लोक कथाओं को जानने की कोशिश की ।

मध्य प्रदेश के कोल आदिवासी समाज सेवा संघ कार्यवाहक प्रदेश अध्यक्ष श्री वसंत कुमार कोल के अनुसार "लुनार" वंश के पांचवे राजा “यजति” ने अपनी राजधानी अपने पांच पुत्रों के बीच में बांट दीये । उनके पुत्रों के वंशज में से एक दक्षिण में जाकर बसे। उनकी दसवी पीढ़ी में चार भाई हुए पंड्या,कोरल,

---

1 https://www.encyclopedia.com/humanities/encyclopedias-almanacs-transcripts-and-maps/kols#:~:text=The%20current%20population%20would%20be,found%20in%20Orissa%20and%20Maharashtra.

2 https://navbharattimes.indiatimes.com/metro/lucknow/politics/kol-caste-will-get-st-status/articleshow/39311383.cms?minitv=true

चोल, और कोल। कोल राजाओं के संताने कोल के रूप से जाने जाते हैं और हम सभी उन्ही के वंशज हैं |मध्यप्रदेश के कुछ अंचल और इलाहाबाद, बांदा क्षेत्र के कोल अपने को रामायण कालीन शबरी के वंशज मानते हैं।इनके अनुसार शबरी चित्रकूट के पास वास करती थी। वहीं भगवान राम को जूठे बैर खिलाई थी और इसी कारण हेतु आज भी मध्यप्रदेश के विभिन्न क्षेत्र में आदिवासियों द्वारा शबरी जन्म दिवस फरवरी 24 को धूम-धाम से पालन किया जाता है।

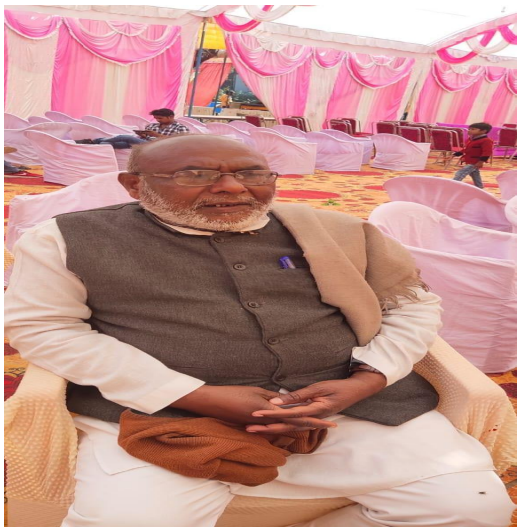

(श्री वसंत कुमार कोल)[3]

दूसरे लोक कथानक के अनुसार “कोल” समुदाय के आराध्यदेव 'सिंगबोंगा' ने आटा से एक लड़का और लड़की उत्पन्न करके एक गुफा में रखा ।गुफा में उन्होंने चावल का शराब जिसे हंडिया(डियांग) बनाने सिखाया। उस डियांग पीने से उनमें काम भावना जागृत हुआ और उनके 12 पुत्रों तथा पुत्रियों का जन्म हुए और उन्हीं से दुनिया की रचना की गई। सिंगबोंगा के आदेश अनुसार इन जोड़ों को विभिन्न प्रकार खाद्य पेय को चुनने को कहा गया प्रथम और दूसरे जोड़े ने भैंस और बैल का मांस को पसंद किए इन जोड़ों द्वारा उत्पन्न लोगों को कोल और भूमिज कहा गया।अन्य जोड़ों ने शाकाहारी भोज्य पसंद किए उनमें से ब्राह्मण और क्षत्रिय पैदा हुए।जो मछली पसंद किए उन्हें भुइया कहा गया।जो सुअर खाना पसंद किए उन्हें संताल कहा गया,और जो दूसरों से मांग कर खाता रहा उसको घसिया कहा गया।इस प्रकार मानव सभ्यता की विकास की धारा आगे बढ़ते गई।

उत्तर प्रदेश के कोलों के बारे मे इतिहासकार डक 1911 में एक रिपोर्ट प्रस्तुत किए उसमे ये लिखते हैं मिर्जापुर के जो कोल हैं वो "वरदी" राजा के वंशज मानते हैं[4]।और ये कुटली क्षेत्र में रहते थे। कुटिल क्षेत्र के विनाश के बाद ये लोग मिर्जापुर के पठार क्षेत्र में बस गए।इस क्षेत्र को कलान के नाम से जाना जाता है।

“कोल” समुदाय को साधारण रूप में "हो" भी कहा जाता है | कोल,मुंडा,हो,और संथाल ये शब्दों के बीच बहुत ही गहरा संपर्क है |’हो” शब्द का अर्थ मानव अर्थात मानव जो भाषा बोलते हैं उसे “हो” कहा जाता है | “हो" शब्द को मूलतः 'हो' की प्रकृति एवं जड़ता की वास्तविकता के साथ दर्शाया गया है। 'हो' आदिवासीयों की शारीरिक बनावट एवं उसके शांत, सरल, सुशील,ईमानदार, दयालु, एकांतप्रिय, स्वतंत्रता प्रिय गुणों को सजीवता से प्रस्तुत करता है। 'हो' आदिवासी की पहचान, अस्तित्व, इज्जत, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, जल,जंगल, जमीन एवं अपने अधिकारों की रक्षा हेतु युद्ध को पसन्द करने की प्राकृतिक स्वभाव की वास्तविकता को प्रस्तुत करता है। “हो” आदिवासी को "कोल" शब्द से

[3] श्री बसंत कुमार कोल ,मध्य प्रदेश के कोल जनजाति के जानकार हैं,उन्होंने अपने समुदाय के लिये बहुत कुछ किये हैं |
[4] कोल जनजाति महिलाओं में परंपरागत सामाजिक परिवेश,काशि विश्वविद्यालय ,1993

सम्बोधित किया जाता है। "कोल" शब्द की प्रकृति की मूलतः पौरुषता एवं पवित्रता को चित्रित करने का प्रयास किया गया है।

"कोल"आदिवासी का "हो-धर्म" की प्रकृत्ति और सृष्टि का सर्वोच्च अलौकिक सर्व शक्तिमान, सृष्टिकर्ता "सिंगबोंगा" के प्रति हो आदिवासियों की आस्था को प्रस्तुत किया गया है तथा हो आदिवासियों का पुजा-स्थल-"देसाउलि" एवं "जएरा" की पवित्रता के साथ -साथ इस कोल समुदाय के पर्व को पर्यावरण के महत्व के साथ दर्शाया गया है [5] |

"कोल " जनजाति एक गौरवशाली मुण्डा परिवार या प्रोटो-अस्ट्रोलाइट परिवार का एक सदस्य है। प्राचीन काल में 'हो' या कोल - आदिवासी समूचे भारतवर्ष में फैले हुए थे। 'जिनोंम विविधता परियोजना (जेंडिय) की खोज के अनुसार 'हो' जनजाति भारत के प्रथम निवासी हैं, इन्हें आँस्ट्रो- एशियाई भाषाई के ग्रुप का कहा जाता है।एक शोध के अनुसार आँस्ट्रो - एशियाई लोंसा आज से लगभग 60,000 साल पहले अफ्रीका से भारत आये थे। "कोल" समुदाय का अपना लिखित इतिहास, साहित्य तथा वैज्ञानिक-लिपि रही है तथा उन्नत कृषि प्रजाति रही है।अतः ये अति प्राचीन काल में आर्यो द्वारा सिन्धु घाटी, हड़प्पा तथा विभिन्न जगहों से भागाये जाने पर 600 ई. पूर्व झारखण्ड प्रदेश आये और झारखण्ड प्रदेश के कोल्हान, क्योंझर, मयुरभंझ आदि क्षेत्र में स्थायी रूप से निवास करने लगे। जहाँ अपनी खूट-कटी भू-व्यवस्था के साथ समतावादी समाज और पारंपरिक प्रजातान्त्रिक देशज शासन प्रणाली (मानकी मुण्डा शासन प्रणाली) का विकास किया । यह समुदाय रखण्ड प्रदेश के सिंहभूम जिले के अन्तर्गत कोल्हान, पोड़ाहाट नामक स्थान में मुख्य रूप से पाये जाते हैं। सिंहभूम के प्राचीन इतिहास में छोटानागपुर पठार के अप्रवाशित 'हो' लोगों का वर्णन मिलता है। जिसमें सिंहभूम के भुइयाँ जाति के लोगों को परास्त कर उनके बसने का उल्लेख है। हो जाति के लोगों ने जिले के दक्षिणी क्षेत्रों के पहाड़ी हिस्से की सुविधाओं को देखकर वहीं स्वतंत्र होकर बसना पसन्द किया तथा वहीं अपने युद्ध-कौशल के बदौलत, 'लड़का कोल' या 'लरका-कोल' के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की[6]। "कोल" जनजाति का अपना अलग सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं देशज राजनैतिक व्यवस्था है। इनकी अपनी भाषा है, अपना इतिहास है, साहित्य और लिपि है, अपनी अलग पहचान और अस्तित्व है। 'कोल' सदैव स्वतंत्र रहे हैं और आजादी उसको पसंद है।

'कोल' शब्द का प्रयोग कब और किस अभिप्राय से प्रारम्भ हुआ, यह व्यक्त करना आसान नहीं है। 'कोल' शब्द का प्रयोग कभी झारखण्ड क्षेत्र के आदिवासी के लिये मुख्य रूप से 'हो' मुण्डा एवं संथाल लोगों के लिए दिकुओं द्वारा प्रयुक्त होता था। अधिकांश लोगों का विचार है कि - 'कोल' शब्द आर्य - हिन्दुओं द्वारा आदिवासियों के प्रति घृणा के लिये प्रयोग किया जाता था। आर्यो ने कोल अनार्य को-कोदास, दस्यु, कृष्ण, कृष्णजक, कृष्णगभी, मृधवाचा, अनासा, अकर्गज अवदेवयु, अबहन, अब्रल, अन्यव्रत, अपाचन, शिशनदेवा, देनपीयु इत्यादि विभिन्न नामों से संबोधित कर उन्हें हेय दृष्टि से देखने की एक परम्परा स्थापित कर दी।'कोल' शब्द का विभिन्न विद्वानों द्वारा विभिन्न-शब्दों में प्रयोग किया गया है (1) 'कोल' शब्द का ऐतिहासिक प्रयोग सर जार्ज केम्पतेस ने सन् 1866 ई० में केवल मुण्डा-भाषा परिवार का बोध करने के लिये किया था।(2) कोलोनेल फिलफोर्ड, कोनेनेल डाल्टन आदि ने भी आट्रिक - भाषा परिवार को बोध करने के लिये 'कोल' शब्द का प्रयोग किया था। (3) पाणिनी ने धातुपआ में अपना विचार व्यक्त किए हैं, 'कोल' शब्द कुल-में से निकला है, जो - समस्त और बन्धुत्व के भाव में प्रयोग होता है।(4) दुर्गा सप्तसती में, - 'कोल' को लड़ने वाली जाति कहा गया है।सिर्फ इतना ही नहीं बंगाली साहित्यकार स्व.गिरिवाला देवी "भारती पत्रिका" में 1893 में "कोल" जनजाति की युद्ध कला और कौशल के बारे में बहुत बारीकी से लिखा है | [7]

"कोल" समुदाय को "हो" कहा जाना उसको लेकर एक मजेदार कथन सुनने को मिलता है। "वारंगचिती" लिपि के प्रतिष्ठता गुरु लोको बदरा जी के चचेरा भाई सिलाई बोदरा जी का कहना है "एक

---

[5] कोड़हों हो,कमल लोचन ,लड़का हो कोल ,झारखंड झोरोखा ,रांची,प्रथम संस्करण,2014,पृष्ठ-5
[6] कोड़हों हो,कमल लोचन ,लड़का हो कोल ,झारखंड झोरोखा ,रांची,प्रथम संस्करण,2014,पृष्ठ-19
[7] देवी गिरिवाला ,भारती,1893,आदिवासी विशेषांक

बार अंग्रेज सरकार ने “कोल” वंश के प्रमुख लोगों को कोलकाता बुलाया। मुंडा मानकियों से चयनित 3 सदस्य अपने परंपरागत वस्त्र पहन कर निर्धारित तिथि में अंग्रेजी हुकूमत के सामने पेस हुए। इसी समय उनके वेश भूषा आदि देखकर अंग्रेज लोग उन्हें बहुत अपमान जनक बातें कही, उन्हें काला कलूटा कहा गया और ये बात उन लोगों को काफी नागवार गुजरी और जब वे लौटे आनन-फानन में सभी मुंडा, मानकिओं को तुरंत बुलाकर एक बैठक के माध्यम से एक नियम सर्व-सम्मति से पारित किया गया कि आज से कोई “कोल” जाति के नाम से खुद का परिचय नहीं देगा। मैं जब झारखंड के “बालुघाट” गाँव जहाँ ‘हो’ भाषा के भाषाविद तथा लेखक डॉ. दास राम बोरदा जी के गाँव में उनसे मुलाकात किया और वहां 3 दिन तक उनके घर पर रहने को मिला तो उस गाँव से कुछ “कोल” लोगों से बात भी की | “कोल” समुदाय के कुछ पुरुष और स्त्रियों से जब बात किया तो उन्होंने खुद को "हो" नाम से परिचय दिए।खुद को “कोल” कहलाने में उनके मन में झिझक और असमानता का बोध होता है यही स्थिति उड़ीसा में भी है । परंतु मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में इसके विपरित सभी “कोल” बड़े गर्व के साथ खुद को “कोल” कहते हैं।उड़ीसा में भी “कोलों” की स्थिति वही है वे खुद को कोल कहना पसंद नहीं करते और खुद को मुंडा या “हो” कहते हैं |भाषाविद कार्तिक कुमार वौन्दा के अनुसार पश्चिम बंगाल में मेदनीपुर के कुछ अंचल में कोल लोग खुद को “हो” या “मुंडा” 1980 से बाद लिखना शुरू किया परंतु उनके “खतियान” में आज भी “कोल”ही लिखा हुआ है | प्राचीन समय में खतियान की व्यवस्था नहीं थी परंतु फिर भी कोल समुदाय अपने स्वशासन व्यवस्था के तहत अपने जमीन को चिन्हित करके रखते थे और कृषि कार्य करता थे |”बाता उली” परब में कोल समुदाय अपने-अपने जमीन पर पत्थर गाड़ कर जमीन में पूजा करते हैं एक प्रकार से यह परब जमीन पर उसके अधिकार को दिखाता है |यह जमीन में पत्थर गाड़ने की परंपरा को झारखंड में “पत्थलगड़ी” के नाम से जाना जाता है|अंग्रेज जब भारत बर्ष में आए तो कर व्यवस्था लागू किये और उसके लिये उन्हे खतियान बनवाना पड़ा| बिभिन्न राज्य में आदिवासियों तथा अन्य जातियों को सूचिबद् करना पड़ा ओडिशा में आदिवासी कोल 33 नंबर पर सूचीबद्ध था और उसी के आधार पर जाति प्रमाण पत्र दिया जाता था | इसी खतियान को अगर हम आधार माने तो झारखंड में कोल जाति को 32 नंबर पर मध्य प्रदेश में 12 नंबर था अंडमान निकोबार में वे जनजाति 1 नंबर पर सूचीबद्ध थे | शोध में यह बात सामने आया है बिहार ,उड़ीसा,मध्यप्रदेश,छतिशगढ़,उत्तरप्रदेश में हो,मुंडा,कोल,बांकिरे,बदरा,समाद,हेमबरम,सुरीन आदि जितने भी सरनेम या कुल नाम है सभी का जाति प्रमाण पत्र पर कोल ही लिखा हुआ है | इससे यह साबित हो जाता है की कलेरियान प्रजाति के मूल जाति “कोल” ही हैं|

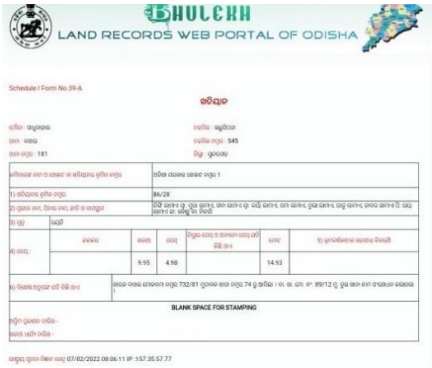

(जाति प्रमाणपत्र और खातियान)[8]

[8] यह जाति प्रमाण पत्र झारखंड सरकार,और यह खातियान ऑडिश सरकार का है जिसमे सरनेम या कुल नाम जिनका मुंडा या हेमबरम है उनका मूल जाति “कोल “ कहा गया है |

कोल समुदाय में धरती की उत्पत्ति कथा

'कोल' समुदाय में धरती की उत्पत्ति के बारे में बहुत सारे मिथक और लोककथा प्रचलित हैं । कोल समुदाय के आराध्य देव "सिंगबोगा" ने सबसे पहले जल भाग की सृष्टि कीया ।उन्होंने जब चारों तरफ पानी ही पानी देखा और पानी में रहने वाले जीव-जन्तु को देखा तो उनके मन मे एक विचार आया कि पानी के एक किनारे कर धरती या स्थल भाग का निर्माण किया जाए । अतः सर्वप्रथम पानी में कछुए और केकड़ा का सृजन किया । उन्हें धरती के निर्माण हेतु काम सौपा | केकड़ा जमीन के अंदर से मिट्टी खोद कर उसे पानी से ऊपर लाने का प्रयास किया परंतु प्रत्येक बार मिट्टी को पानी से ऊपर तक लाते - लाते मिट्टी पानी में विलीन हो जा रही थी।इस तरह हर बार वह असफल रहा । जब ये अपने काम में असफल रहा तो सिंगबोगा ने कछुआ को यह काम दिए परंतु कछुआ के साथ भी वही हुआ जो केकड़ा के साथ हुआ था।उसके बाद एक बड़ा केंचुआ को यह काम दिया गया और केंचुआ मिट्टी को खाकर पानी से ऊपर आया और उसके मल से विशाल भू-खंड की स्थापना की जिसे धरती या पृथ्वी कहा जाता है । पृथ्वी के सृष्टि के बाद 'सिंगबोंगा' अपनी जांघ के मैल से दो वर्म पैदा किये- एक स्त्री, दूसरा पुरुष । फिर इन्हें धरती के निर्माण हेतु काम सौंपा गया । इस प्रकार धरती के निर्माण में चेरो (वर्मा/केंचुआ) का योगदान से" धरती उत्पन्न हुआ इस लिए उन्हें जमीन और पानी में रहने का अधिकार मिला और कछुआ और केकड़ा धरती नहीं बना सके इसलिए वे आज भी पानी में ही रहते हैं । इस प्रकार की लोक कथाएं कोल समुदाय में प्रमुख रूप से पाया जाते हैं।प्राचीन सिंहभूम के मरंगबुरु पहाड़ को इसलिए कोल समुदाय एवं संथाल समुदाय ने प्रथम भूखंड मानकर पूजा करते आ रहे हैं जिसे वर्तमान वैज्ञानिकों ने भी माना की सिंहभूम का पहाड़ 320 करोड़ साल पुराना है।"प्रोसिडिंग ऑफ दी नेशनल एकादमी ऑफ़ साइंस ऑस्ट्रेलिया" ने यह सिद्ध किया की सिंहभूम की सारंडा जंगल ही सबसे पहले धरती के रूप में प्रकट हुई थी। अब तक सभी लोग अफ्रीका महादेश को प्रायद्वीप मान रहे थे। इस प्रकार धरती की उत्पति को लेकर जो मिथक "कोल" समुदाय में है उसे सम्पूर्ण रूप से झूठलाया नहीं जा सकता । संथाल समुदाय में तो लुगुबुरु पहाड़ जो धनवाद - बोकारो अंचल में है उसको पहला भूखंड मानकर पूजा करते हैं।धरती सृष्टि अथवा अन्य पौराणिक कथन के बारे में मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ के 'कोल' समुदाय के पास ज्यादा जानकारी नहीं है इसके प्रमुख कारण यह है कि इन्होंने ज्यादातर बाहरी लोगों के साथ समय बिताए एवं आधुनिक जीवन शैली यह कथानक को कभी माना ही नहीं। उन्होंने पूजा त्योहार में पशुबली आदि को कम ही माना और पूजा में नारियल और फल चढ़ा कर पूजा किया जाता है ।

कोल समुदाय में मानव की उत्पति को लेकर कई तरह की लोक कथाएं प्रचलित है।कोल समुदाय के आराध्य देव "सिंगबोंगा" ने सुरमी-दुरमी को अर्द्ध - मानव प्राणी के रूप में निर्माण किया था । पूर्ण रूप तो बाद में किये । सुरमी-दुरमी आदिम मानव-जाति के विकास की कड़ी हैं । सुरमी-दुरमी द्वारा रचित सुरम्य प्रकृति को देखकर सिंगबोंगा बहुत प्रसन्न हुए और सृष्टि को उपहार के रूप में सृजन तरु-वाटिकाओं को देखकर उनकी सुरक्षा, उपयोग एवं विकास की चिन्ता उन्हें हुई । अतः वे मिट्टी की प्रतिमा बनाकर उसमें प्राण का प्रतिरोपण किए और उन्हें ' लुकुहडम' या ' लुकु बूढ़ा" के नाम से सम्बोधित किया । वह अकेले पुरूष होने के कारण सृजन करने में असमर्थ रहे । इसलिए ' सिंगबोंगा' ने ' 'लुकुहडम' जब सोया था तो उसकी बायीं पसली की हड्डी निकाल कर एक स्त्री का निर्माण किया जिसका नाम ' लुकुमी' (लुकुमी बूढ़ी) पड़ा । सम्भवतः यही नाम ' लुकुमी' आगे चलकर "लक्ष्मी" के रूप में जाना जाता है । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कोल समुदाय के मिथक में आई पुरूष, लुकु, और आदि नारी ' लुकुमी' हुई जिनसे मानव जाति का सृजन एवं विकास हुआ । संसार के शुरुआत में सिंगबोंगा ने लुकु एवं लुकुमी को जंगल में पाए जाने वाले सभी फल को खाने के लिए आदेश दिए लेकिन इमली फल जिसे ' हो' भाषा में (जोजो) कहा जाता है उस फल को खाने को मना किया था । बहुत दिनों तक अपनी उत्सुकता को रोके रहने के बाद दोनों ने आत्म नियंत्रण खो दिए और ' जोजो' फल को ग्रहण कर लिए। फल को खाते ही उनके मन में लज्जा की भावना आने लगी और वे अपने आपको नंगा होने का आभास किए । वे पेड़ के पत्तो से अपने शरीर को ढकने लगे तभी ' लापता घास' ने उनके शर्म को ढका और इस प्रकार परिधान की आवश्यकता हुआ एवं निर्माण मानव समाज के लिए यह प्रथम चरण हुआ ।

जब लुकु और लुकुमी के साथ-साथ रहने पर भी कोई संतान की उत्पत्ति नही हुई तो ' सिंगबोंगा' ने उन्हें सबई घास की रस्सी बनाकर ' गन्डू' (खाट) के निर्माण की प्रेरणा दी और जब उनकी शरीर आपस मे टकराई और नजदीक आये तो उनमें यौन-संबंधों का विकास हुआ और उसके बाद बाल-बच्चे हुए । परंतु उन्हें स्वास्थ्य से सम्बंधित कोई जानकारी नही थी । जब बच्चे बड़े हुए तो अस्वस्थ हो गए और इनके माता-पिता भी परेशान हो गए । अतः चिंतित होकर ,सिंगबोंगा, को ढूढने के लिए निकल पड़े। तभी सिंगबोंगा वृद्ध पुरूष के रूप में मिले। सिंगबोंगा ने उन्हें 'रक - पुडिसिम' (सफेद मुर्गा) की बली देने एवं डियांग (हड़िया) को भेंट करने का आदेश दिया । उनके माता-पिता ने ऐसे ही किया । बच्चे बिल्कुल ठीक हो गए। तब से ही ' हो' समाज में सिंगबोंगा, को मुर्गे की बलि प्रथा और हंडिया चढाकर पीने की परम्परा शुरू हुई ।

अन्य एक लोक कथा के अनुसार ' सिंगबोंगा ' सृष्टि को आगे बढ़ाने को लेकर काफी चिंतित होने लगे। लुकू बूढ़ा और लुकू बूढ़ी एक भाई - बहन की तरह रहते थे।उनके भाई बहन- बन के रहने से वे काफी चिंतित हो गए और उचित अवसर पर कुछ करने का ठान लिए। उन्होंने लुकू बूढ़ा और लुकू बूढ़ी को इमली के फल खाने से माना किए थे और यह भी शख्त हिदायत दिए थे की सृष्टि को बचा के रखने के लिए सिर्फ 4 गलती माफ़ किया जा सकता उसके बाद भगवान सिंगबोंगा उन्हें चाहकर भी कुछ मदद कर नहीं सकते। प्रकृति की गोद में खेलते-खेलते लुकू और लुकुमी सब कुछ भूल गए थे और जंगल के फल को खाने के साथ इमली फल को भी खाए जिससे उनके शरीर में रोमांच की सिहरन खिलने लगी और साथ ही उनके इस गलती से जंगल का फल कम होने लगा और वे चिंतित भी हो गए कि जंगल के फल अगर खत्म हो जाए तो वे खायेंगे क्या।भगवान सिंगबोंगा ने उनकी गलती को एक बार माफ करते हुए उन्हें कुछ चावल दिए और बोले यह एक पवित्र चावल है इसको जहां भी लगा दोगे वहीं चावल फलेगा परंतु जिस दिन इसकी पवित्रता नष्ट हुई उसी दिन ये परिवर्तित हो जाएगा। लुकू बूढ़ा एवम लुकू बूढ़ी सिंगबोंगा का नाम लेकर चावल को जमीन में बुन दिए और कुछ देर में वहीं चावल से पेड़ उगने लगी और उसमे चावल भी फलने लगा। वे दोनों वही चावल को लेकर खाना बनाते और आराम से दिन बिताने लगे।कुछ दिनों के बाद जब लुकू बूढ़ा चावल लाने को गया उसी समय उसे मल त्याग के लिए आनी पड़ी और मल त्याग करते- करते चावल तोड़ने लगे।चावल एक पवित्र पेड़ था इसलिए मल त्याग करते हुए तोड़ने से उसकी पवित्रता नष्ट हो गई और चावल के ऊपर एक परत तुरंत आ गई और अब चावल धान बन गया ।यह लुकू - लुकमी की दुसरी गलती थी। इससे पहले उनके लिए खाने की चीज बहुत आसानी से मिलती थी। अब उनकी गलती के चलते मुश्किल से उन्हें खाना मिलने लगा। जंगली जानवरों का आक्रमण भी अब आने लगा।इन सब से निजात पाने के लिए उन्होंने फिर भगवान सिंगबोंगा की प्रार्थना की।सिंगबोंगा उनकी प्रार्थना सुनकर प्रकट हुए और उन्हें बोले की तुम लोग "सखुआ" का फुल लेकर उसको सभी देवी देवताओं को चढ़ाओ जिससे तुम्हारी सारी आपदाएं दूर होगी। उन्हें "सखुआ"फूल आने तक इंतजार करने को कहा गया। फिर सिंगबोंगा अदृश्य हो गए। लुकू - बूढ़ा ,लुकू - बूढ़ी सिंगबोंगा के उपदेश को सुनकर भूल गए और अपने- अपने कार्य से व्यस्त हो गए। कुछ दिन के बाद सभी जंगली जानवर फिर से आक्रमण करने लगे उन्हें कुछ सूझा नहीं अत: फिर से उन्होंने सिंगबोंगा की प्रार्थना की। सिंगबोंगा उनके तीसरी गलती की ओर ध्यान आकर्षित करते हुऐ कहे कि ये आपका आखरी गलती थी।अगर आप दोनों खुशी से रहना चाहते हो तो सभी देवी देवताओं को डियांग अर्पण करो।उन्होंने चावल से डियांग बनाने की विधि को बताए। अगले दिन लुकुमी या लुकू बूढ़ी सुबह नहा धो कर उपवास की व्रत रखे डियांग बनाई और सभी देवा- देवियों को अर्पण किये और साथ ही प्रसाद के रूप में डियांग (हंडिया) ग्रहण किए। वही डियांग को पीने के बाद उनके अंदर रोमांच की अनुभव हुई और सब कुछ भूलकर उन्होंने एक होगाए।और काल क्रम के अनुसार लुकू और लुकमी के बच्चे हुए और कोल समुदाय

के लोग यह भी मानते हैं की वे उनकी वंशज हैं।

(नई हंडी में पवित्र डीयांग (हँडिया) बनाती कोल महिला)

इस प्रकार इस मिथक में युवती से मां के रूप में परिवर्तन को दिखाया है।मानव समाज में निर्माण एवं सृजन , उनके जन्म, मानसिक विकास, उनके यौन-भावना का उदय , सिंगबोंगा के प्रति आस्था और विश्वास, उन्हें प्रसन्न करना आदि सभी का समावेश एक साथ किया गया है।धरती के सृष्टि और सृष्टि को बचाके रखने के लिऐ सृजनामकता को दर्शाया है ।

कोल समुदाय में पूजा और त्योहार :

(पूर्वजों के लिये मुर्गा बलि देते हुए कोल समुदाय के दिउरी)[9]

किसी भी जनजाति या आदिवासी परंपरा में पूजा, पर्व, त्योहार का महत्वपूर्ण स्थान होती है। उनकी विशिष्टता ही उनकी संस्कृति में छुपी होती है। इस पूजा-पर्व के दौरान वो लोग आपस में मिलते हैं और

[9] कोल विद्रोहो(1832) के दौरान सहिद हुए पूर्वोजों के लिये प्रति वर्ष फरवरी 2 को सहिद दिवस पालन किया जाता है |

विभिन्न प्रकार के वाद्ययंत्र के सहारे उन्होंने जीवन में खुशियाली लाने की कोशिश करते हैं। आदिवासी समुदाय पूजा पाठ में विश्वास करते हैं।आत्मा-पुनर्जन्म पर विश्वास करते हैं। इसलिए उन्होंने प्रत्येक पूजा पाठ में अपने पूर्वजों को अपने साध्य के अनुसार मुर्गा,या पशु बलि देकर पूर्वजों को अर्पण करते हैं। कोल समुदाय के प्रत्येक पूजा परब प्रकृति के ऊपर है।प्रकृति उनके लिए मां समान है। इसलिए प्रकृति को बचाना ही उनके लिए सबसे पहला कर्तव्य है।परंतु व्यक्त के बदलते समय में कोल समुदाय अब धीरे-धीरे बलि परंपरा से हट कर नारियल और फल देकर अब पूजा कर रहा है | ये परिवर्तन वर्तमान के पीढ़ी के लिये अहिंसा की मार्ग को दिखाता है |

(क) मागे परब:

कोल समुदाय में " मागे परब " सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण परब है। यह एक सामूहिक पर्व है।यह पर्व माघ यानी जनवरी माह से आरंभ हो कर अप्रैल माह तक चलती है। जनवरी माह को (मागे चंडू:ऊ) बोला जाता है। हिन्दू धर्म में जैसे किसी निर्दिष्ट दिन को ही कुछ पूजा या पर्व का दिन निश्चित किया जाता है जिस प्रकार वसंत पंचमी को सरस्वती पूजा होती है या फिर शरत ऋतु की अष्टमी को दुर्गा अष्टमी दशमी को दशहरा जैसे निर्दिष्ट तिथि को ही पूजा पर्व का स्थान है उस प्रकार के पर्व आदिवासी या कोल समुदाय में नहीं रहता ।उसका एक विशेष कारण यह है कि इस समुदाय में शुभ- अशुभ और छूत - अछूत की जो परंपरा है उसको बहुत बारीकी से ध्यान रखा जाता है। किसी गांव में किसी की मृत्यु होना या जन्म होना को अछूत मानी जाता है और जब तक उसकी अछूत की समय खतम नही होता तब - तक कोई भी पूजा पाठ नही होता है।इस कारण “कोल” समुदाय में पूजा और पर्व का कोई निर्दिष्ट समय नहीं होती।

(मागे परब कोल समुदाय के सबसे महत्वपूर्ण परब)

कोल समुदाय में मागे परब आठ दिन तक मनाया जाता है। और इस परब के प्रत्येक एक - एक दिन महत्वपूर्ण है। भले ही यह एक सांस्कृतिक पर्व लगती हो परंतु उनके अर्थ की गहराई को देखने से बहुत ही रोचक और गहन प्रतीत होता है। मागे पर्व दो शब्द(मागे +पर्व) से बना है।मागे का अर्थ ' माता' अर्थात सृष्टि या सृजनकर्ता । “माँ” केवल सृष्टि कर्ता ही नहीं ' जननी ' के साथ - साथ लालन पालन,वंश वृद्धि,शिक्षा को दर्शाता है। जो “माँ” के बिना इस संसार में हो नही सकता।इस प्रकार मानव के लिए सभ्यता का प्रारंभ “माँ” ही से मानना पड़ेगा। इस लिए मागे पर्व को सृष्टि का त्योहार भी बोला जाता है।

1.प्रथम दिन आनादेर : मागे पर्व का प्रथम दिन को अनादेर कहा जाता है। अनादेर शब्द ' अ देर क्रिया से बना संज्ञा शब्द है।जिसका अर्थ होता है प्रवेश करना या अंदर आना। इस प्रथम दिवस में ' देषाउलि ' और ' जयेरा' स्थान को साफ किया जाता है। कोल समुदाय के मन्दिर में दो अंश में पूजा स्थान को रखा जाता है । देवताओं(कोवा बोंगा) के लिए अलग जगह और देवियों(कुई बोंगा) के लिये अलग जगह होती ।देवताओं के पूजन स्थान को “देषाउलि” कहते हैं और देवियों के पूजन स्थान को ' जयेरा' कहा जाता है। उन दोनों के लिए रहने के स्थान को सामूहिक रूप से 'जाहेर स्थान ' कहा जाता है। उन देवी देवताओं के रहने के लिए जंगली कांटेदार सवाई घास से छावनी की परम्परा है। आनादेर के दिन “जयेरा” स्थान को साफ - सफाई किया जाता है।छावनी किया जाता है।पूजा पाठ के लिए पुरी तरह से तैयार किया जाता है। कोल समुदाय में आनादेर के दिन नई वस्तु खरीदने का रिवाज है।दीपावली या धनतरेस में जिस तरह घर के लिए नई वस्तु खरीदना शुभ माना जाता है ठीक उसी तरह आनादेर के दिन “कोल” समुदाय में औरतें साड़ी,कंगन,जेवर, गहने,कपड़े,खाने का बर्तन आदि खरीदते हैं ।ठीक उसी तरह पुरुष लोग गाड़ी, हल,बैल, तीर, धनुष, जाल आदि खरीदते हैं।इस प्रकार आनादेर के दिन सभी पुराने वस्तुओं को सफाया कर नए वस्तुओं को अपनाने के लिए कहा जाता है।

(“देषाउलि” में पूजा कार्य करते हुए)

2.द्वितीय दिवस गऊ महरा

आदिवासी समाज संपूर्ण रूप से कृषि कार्य से अपना जीवन और परिवार चलाते हैं।कृषि कार्य के लिए पशु ,उसके लिए सबसे महत्वपूर्ण है। गाय,बैल,बकरी,मुर्गा, भैंस उसके गृह पालित पशु हैं।जिनके बिना आदिवासी समाज अधूरा सा लगता है। गोपालन के लिए कोल समुदाय एक निश्चित लोगों को जिम्मेदारी दिया करते हैं जिनको "गोप" कहा जाता है।ये गोप पशु संपत्ति का ध्यान रखने के साथ साथ शादी ब्याह में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करते हैं।प्रत्येक शादी ब्याह में उनके आदर सत्कार के लिए ' गोप ' को एक मुर्गा भी दिया जाता है। “कोल” देवलोक के विश्वास के अनुसार इनके गृहपालित पशु और पक्षियों को उनके वन देवता रक्षा करता है। उस वन देवता को 'बुरु बघिया ' कहा जाता है। बुरु बगिया की पूजा करने के हेतु ही गऊ महरा पर्व मनाया जा रहा है। लोगों में मान्यता है कि वर्ष भर पशुओं को अगर वन या जंगल-झाड़ी आदि में चराया करते हैं तो हमारे पशुओं की रक्षा जंगल के जंगली पशु से वनदेव' (बुरु बगिया) ही बचाते हैं। इस वनदेव बुरु बगिया के नाखुश होने से जंगली पशु आदि शिकार करते हैं। इस प्रकार से हमारे पालतु पशुओं को जंगली पशुओं से वन देव (बुरु बगिया) हमेशा रक्षा करते है। इसलिए, कोल समुदाय में प्रत्येक वर्ष गउ महरा पोरोब् मनाने का रिवाज हुआ।

3.तीसरा दिवस आते इली

मागे परब का तीसरा दिन को महत्वपूर्ण दिन माना जाता है । आते का अर्थ है पृथ्वी और इली का अर्थ होता है नया हांडी से अरुआ चावल से बना हुआ डियंग अर्थात हंडिया।इस दिन धरती माता को पवित्र हंडिया अर्पण किया जाता है।लोक कथा के अनुसार जब लुकु बूढ़ा एवम लुकुय बूढ़ी साथ में रहा करते थे। इमली (जोजो) फल खाने से लज्जा का बोध हुआ।और लुकु बूढ़ी पत्ते पहनना शुरू कर दिए थे।समय के अनुकूल मार्गशीर्ष (शुकून) माह में पवित्र नारी लुकु बूढ़ी की मासिक ऋतु स्राव प्रारम्भ हुई थी। उस काल में अन्य कोई भी मनुष्य जन्म लाभ किया नही था ।अपने शरीर से मासिक ऋतु स्राव होना आश्चर्य एवं भयावह था लुकु बूढ़ी को इस विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं था। इसलिए वह एक जंगली लता 'सियाली लता (रुउङ नाइ) की झाड़ी में सो गई थी। उसे सपने में आदिमाता के दर्शन हुऐ। उन्होंने लुकू बूढ़ी को सियाली लता (रुउङ नाइ) के पत्तों से अपना बदन ढाँकने के लिए बताए,और सियाली लता (रुउङ नाइ) की डोरी को कपड़े की तरह इस्तेमाल करने के लिए बताया गया।उसी समय से पवित्र लुकु बूढ़ा और पवित्र लुकु बूढ़ी के द्वारा चिथड़ा पहनना शुरू हुआ। आदि माता जायरा

(जयेरा मा) ने ही जिस स्थान में मासिक ऋतु श्राव का खून गिरा उसको गोबर से लिपने का पवित्र ज्ञान बताया और उस स्थान में हाँड़िया अर्पण करने को कहा गया । अगले वर्ष से इसी प्रकार “आते उली” में सियाली पत्ता लाकर गाय के गोबर से घर को लीपा जाता है और पवित्र हाँडिया की पूजा कर अर्पण किया जाता है। आते उली के दिन पुजारी (दीऊरी) हाथ में सियाली पत्ता का दोना लिऐ हंडिया अर्पण करते हैं।प्रत्येक घर से हंडिया लाकर पुजारी के दोना में हंडिया डाला जाता है और वही हंडिया को जमीन पर डाला जाता है।

4. चौथा दिवस है:साकम

है:साकम पवित्र माँगे पोरोब' का चौथा दिवस होता है। है: शब्द का अर्थ होता है तोड़ना और 'साकम' का अर्थ होता है पत्ता। हे साकम का सही अर्थ होता है, 'माँगे पोरोब्' के आयोजन के लिए पत्ता तोडना । कोल देवलोक में अपने उपयोग के लिए पत्ता तोड़ने पर कोई दोष नहीं होता है। मगर, पूजा-पाठ' और अन्य अनुष्ठानों में पत्ता तोड़ने पर दोष माना जाता है। इसलिए है: साकम' में पत्ता तोड़ने के लिए जब औरत लोग जंगल जाती हैं तो गाँव के किनारे गइँश्री (गइँषिरि या ग्राम श्री) में 'हाँड़िया का मेयाँ (डियाङ माया) अर्पण करने का रिवाज है। और जंगल के किनारे वनदेव' (बुरु बगिया) को कोई पत्थर या पत्ता आदि देना अनिवार्य माना जाता है। ऐसा नहीं करने पर 'गइँश्री (गइँषिरि) और 'वनदेव' (बुरु बगिया) का उल्लंघन माना जाता है। गईश्री एवं वनदेव को उल्लंघन करने पर जंगल में कोई अनहोनी होने की आशंका पैदा होती
है। क्योंकि, माँगे पोरोब के उपलक्ष्य में नये-नये मेहमान आते हैं। उन सबको आदर-सत्कार करना,खिलाना-पिलाना अति जरूरी होता है। खिलाने-पिलाने के लिए उतने पात्र या बर्तन आदि मौजूद नहीं होते है। खाने-पीने के लिए पत्ता होना अति आवश्यक होती हैं। इसलिए, पत्ता तोड़ने के लिए जंगल जाना जरूरी होता है। इन सब में थोड़ी सी भी असावधानी होने से बड़ी-बड़ी घटनाएँ आदि होती हैं। इन सारे विपत्तियों से बचने के लिए ही "है:साकम" का कार्यक्रम सम्पन्न किया जाता है। "है:साकम" में गाँव के ग्रामश्री (गइँषिरि) एवं वन देवता (बुरु बगिया) को आदर एवं सम्मान देने का रिवाज है। बुरु बगिया को एक प्रकार यह परब को सफल करने के लिए निमंत्रण किया जाता है की जंगल से जो उपजा सामान है उसे दिया जाए जिससे ये परब सफल हो पाए। इस लिए गाँव के किनारे ग्रामश्री को हॉड़िया का मेयाँ (मायाँ) अर्पण करने का रिवाज है। उसी प्रकार से वन देवता (बुरु बगिया) को कोई पेड़ की डाली या पत्थर आदि अर्पण करने का रिवाज है।इसलिए आदिवासी अंचल के प्रत्येक जंगल के अंदर बहुत आसानी से कटा हुआ पेड़ के ऊपर पत्थर रखा हुआ आपको दिखने मिल जाएंगे ।

(वन देवता -बुरु बगि़या को निमंत्रण)

5. पांचवा दिवस गुरि: लोयो
मागे परब का पांचवा दिवस भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। गुरि: शब्द का अर्थ होता है गोबर लेपन और लोयो शब्द का अर्थ होता है गोबर लेपन के रात शुभा शुभ वाणी।इसका तात्विक अर्थ यही होता है की मागे परब के पूर्व संध्या पर शुभा शुभ वाणी जान लेना। इस लिए संपूर्ण घर को गोबर से लेपन कर पवित्र किया जाता है।इस कार्य में पुजारी (दिऊरी) और उसकी पत्नी निशिपालन का व्रत रखते हैं। उस रात को वे खटिया में सोते नहीं है।और खजुर के पत्ते से बने हुआ चटाई पर सोते हैं,और सुबह तक रात भर के प्रकृति के इशारे से शुभ-अशुभ का निर्णय कर लेते हैं।

(खजुर के पत्ते की बनी हुई चटाई)

6. छठवा दिवस मरं पोरब

मागे पर्व का छठवां दिन है मरं परब।जैसे की पहले ही कहा गया है मागे परब का मतलब ही होती है माँ अर्थात प्रकृति का परब। सृष्टि का परब।सृजन का परब।मातृ शक्ति के बिना सृजन असंभव है। कोल देवलोक में दोनों शक्ति नर शक्ति और नारी शक्ति की मान्यता है। नर शक्ति को "देषाउलि" और नारी शक्ति को "जायरा" कहा गया है। और दोनो देव-देवियों को पितृ तुल्य एवम मातृ तुल्य माना जाता है।"देषाउलि" के लिए लाल मुर्गा (हड़ करसा) और "जायेरा" को लाल मुर्गी देकर पूजा की जाती है।

7. सातवां दिवस जतरा परब।

मागे परब का सातवां दिन को जतरा परब कहा जाता है।इस दिन मागे परब में जो दोऊरि पूजा करते हैं ये उनकी वंशज की पूजा होती है।इस दिन कोल देवलोक में केवल देवी पुजा किया जाता है। जतरा परब में जायरा बूढ़ी, नागे ईरा (जल देवी) को प्रमुख रूप से पूजा किया जाता है ।खेती के लिऐ जल देवी की विशेष योगदान है जिनके बिना खेती करना असंभव है।

8. आठवां दिवस हर मगेया या हर बगिया परब

मागे परब को आठवां दिन व अंतिम दिवस कहा जाता है। है:साकम के दिन वन देवता (बुरु बगिया) को गांव में अतिथि के रूप में आमंत्रण देकर बुलाया गया था उस देवता को विदाई देना भी कोल देवलोक में एक मानवतापूर्ण कार्य है। बुरु बगिया का आवास स्थान जंगल ही होता है उनको पुन: स्थापित करना ही अंतिम दिन का कार्य होता है।इस दिन बुरु बगिया (वन देवता) को काला मुर्गा और बीरी दाल देकर पूजा किया जाता है। और अगले वर्ष को इसी समय को इंतजार करने के लिए वन देवता को इंतजार करने को वादा किया जाता है।इसके बाद सहजन की लकड़ी से उनके रास्ते को बंद कर दिया जाता है। इस प्रकार मागे परब जो आठ दिन तक चलता है इसी प्रकार संपन्न हो जाती है।

(ख) वन भोज

आदिवासियों को उनकी प्रकृति पूजा के लिए जाना जाता है । उनके प्रत्येक त्यौहार, पर्व में कुछ न कुछ मानवीय संदेश छुपा रहता है। कोल देवलोक में उनकी मृत्यु संस्कार को लेकर बहुत सुसंस्कृत और सुदृढ़ संस्कृति हैं। आदिवासी समाज में आत्मा और पुनर्जन्म की विश्वास है।साधारण मृत्यु में उनकी आत्मा को बुलाया जाता है और पूर्वजों में सामिल किया जाता है। कोल समुदाय में किसी की अगर साधारण मृत्यु होती है तो उसको दफनाने का रिवाज है।और उनको कब्रिस्तान में स्थान दिया जाता है और 1 साल के बाद अप्रैल - मई माह में अपने सुविधा अनुसार मृत्यभोज या फिर शासनदीरी किया जाता है।ये अपनी इच्छा और सुविधा अनुसार होती है परंतु जब तक उनके घर में ये श्राद्ध कर्म **(**दीरी दूल सनम**)** नहीं हो जाता तब तक घर में कोई भी विवाह आदि शुभ कर्म नहीं हो सकता। शशन दिरी के लिये अपने पूर्वजों के याद में पथर गाड़ डिया जाता है| उस पथर के ऊपर उनके नाम और परिचय रहता है | 100 साल बाद भी कोई अगर अपने पूर्वजों को खोजता है तो उसी शासन दिरी पथर उसकी साक्षी

बंता है | मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में ये कार्य 10 या 11 दिन में किया जाता है। मध्य प्रदेश कोल समुदाय के देवलोक में अपनी स्वशासन व्यवस्था के तहत श्राद्ध कार्य के लिए गांव के मुखिया से अनुमति लेना होता है।जिसे दशगात्र की अनुमति लेना कहते हैं।इसमें घर के मुखिया गांव के मुखिया से अनुमति लेते हैं कि वह दशगात्र कराना चाहता है, और इसके लिए विधिवत उनसे अनुमति लेता है। उसमें यह धार्य हो जाता है कि श्राद्ध कर्ता कितने लोगों को खाना खाने बुलाना चाहता है। सिर्फ नारी समाज को,सिर्फ पुरुषों को,सिर्फ बच्चों को,या फिर सभी लोगों को अगर उतना समर्थ उसमें नहीं होता है तो सिर्फ मुखिया को ही खिला देने से श्राद्ध कर्म या दशगत्रो कार्य सफल माना जाता है। और यह सर्वमान्य होता है। कोल देवलोक के मृत्यु संस्कार में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि जिनकी मृत्यु असाधारण या किसी दुर्घटना या फिर किसी महामारी में मृत्यु हो जाने से मृत्यु व्यक्ति के शरीर को अलग ही कब्रस्तान या गांव की बाहर दूसरे कहीं दफना दिया जाता है और उन्हें अपने पूर्वजों में सामिल नही किया जाता है। परंतु प्रत्येक वर्ष उन पूर्वजों के लिए एक दिन सम्पूर्ण रूप से अलग से दिया गाँव से बाहर उनके साथ रह कर दिया जाता है ।कहीं ना कहीं वे लोग भी परिवार के अंग ही थे | अस्वाभाविक मौत की वजह से भले ही उनके स्थान अपने पूर्वजों मैं नहीं रखा जाता है परंतु कोल समाज उन्हें कभी भूलता नहीं और उन्हें वर्ष के एक दिन गांव से बाहर सुबह से शाम उन पूर्वजों के लिया पूजा किया जाता है।खाना बना के उन्हें समर्पित किया जाता है सपरिवार वही खाना बना के खाते हैं।इसी को ही वन भोज परब कहा जाता है।कोल देवलोक की यह मानवियता तथाकथित सभ्य समाज के लिये एक आदिवासियत की कहीं ना कहीं दर्शाता है |

(ग)बहा परब

कोल समुदाय में बहा परब दूसरा पवित्र त्योहार माना जाता है। इस परब में सखुआ पत्ता (सरजोम) एवं गोटा मसूर दाल का भोग या प्रसाद होना अनिवार्य है। कुम्हार से लिया गया नया हण्डी में भात पकाया जाता है। और नया हण्डी में ही 'गोटा मसूर दाल को भी सिझाया जाता है। इसमें हल्दी, तैल, मशाला, नमक आदि नहीं दिया जाता है। दो सखुआ पत्ता (रुउङ साकम) में 4-4 जगह कुल 8 जगह भोग चढ़ाने का रिवाज पवित्र माना जाता है। इस परब में राँगा पाट (श्रृष्टि देवता),चोनदोन पाट (श्रृष्टि देवी) आ: वोंगा (श्रृष्टि देवता) तथा बिर वोंगा (श्रृष्टि देवता) और पुकन जतारा (श्रृष्टि देवता) आदि को भोग चढ़ाया जाता है।

(घ) होन बा: इस परब में फल की पूजा की जाती है।जंगल के सभी फल को लाया जाता है और उसकी पूजा किया जाता है। प्रकृति सृष्टि के लिऐ फल का होना जरूरी है।

(च) हेर मूठ: प्रकृति के साधक आदिवासियों के कृषिकार्य के लिए खेती के सभी साजो सामान, तरीका की विकास हेर मूठ की दिन ही हुआ था इस लिए कृषि कार्य की विकास के लिए हेर मूठ परब मनाया जाता है ।

(ज)छाता परब: कोल जनजाति में 'छाता मेला (चाता पोरोब) एक महत्वपूर्ण परब है ।हो समुदाय के मतानुसार चोनदोन पाट एक पवित्र नारी पउँड़ि (देवी) होती हैं। आदि काल में यही देवी मनुष्यों को पहनने के लिए तसर के कपड़े आदि दी थी। खाने-पीने के लिए काँसा के वर्तन, औरतों के लिए सोना और चाँदी के गहने आदि दी थी। "बड्ताउलि परब" में गलती होने से देवी ने दण्ड दिया। दण्डस्वरूप औरतों के सारे वर्तन एवं सोना-चाँदी के गहने आदि ओझल हो गये। तब गाँव में बैठकी हुई, बैठक में पता चला कि सारे श्रृंगार और वर्तन आदि 'चोनदोन पाट' (देवी)वापस ले ली है। उसे खुश कराना अनिवार्य होगा, उनके खुश होने से सारे सोना-चाँदी के गहने लौटा देगी। तब उनलोगों ने छाता मेला का आयोजन करने का फैसला हुआ। छाता मेला का आयोजन करने से औरतों के सारे सोना-चाँदी के गहने लौटा दी। तब से आज तक छाता मेला का आयोजन अति उत्साह एवं उमंग के साथ किया जाता है।

(झ) करमा पूजा:

कोल देवलोक में कर्म पूजा का स्थान महत्वपूर्ण है। करमा पूजा के लिए एक स्थान को सुरक्षित रखा जाता है। इस स्थान में ही 'करमा देवताकी पूजा होती है। इस स्थान में ही रात को जागरण होता है। रात भर 'करमा देवता की कहानी सुनाया जाता है। कहीं-कहीं पर पवित्र करमा देवता' का 'जतरा पाठ' भी किया जाता है। इस 'जतरा पाठ' में करम देवता को खुश करने के लिए तरह-तरह के आयोजन भी किया

जाता है। इस जतरा पाठ में अलग-अलग समुदाय के लोग बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते हैं। इस तरह से कोल समुदाय के साथ दूसरे समुदाय के लोग भी आपसी सद्भावना के साथ रहते हैं। जिसमे आपसी संपर्क ,भाई चारा बढ़ता है और भी सुदृढ़ होता है।

कोल देवलोक में भाषा एवं लिपि समस्या

यह सर्व मान्य है की कोल समुदाय प्राचीन जन जाति है।यह विभिन्न इतिहास कारों ने अपने इतिहास ग्रंथ में दर्ज है।यह प्राचीन जनजाति जो भाषा बोले बोलते हैं वह "हो" भाषा कहा जाता है। कोल समुदाय की जो लिपि है इसको" वारंचिती" लिपि कहा जाता है और यह लिपि वर्तमान झारखंड के सरकार द्वारा अनुमोदित राजकीय भाषा है।इस लिपि और भाषा के बारे में जार्ज ग्रियर्सन द्वारा रचित "**द लिंगुवेस्टिक स्टडी ऑफ इंडिया -वॉल्यूम** 4 ,जो 1904 में प्रकाशित हुआ है वही विशेष रूप से वर्णित है।" **द ऑर्जिनल इन्हेबेटेंट ऑफ भारतवर्ष और इंडिया"** में गुस्ताव ऑपर्ट 1893 में लिखते हैं की कोल आर ऑर्जिनल इन्हिहेटेंड ऑफ इण्डिया।और इस से पहले 1845 **"द कलकत्ता रिव्यू**"कलकत्ता यूनिवर्सिटी द्वारा प्रकाशित जर्नल में 1925 में **"द स्टडी ऑफ कोल"** के बारे में काफी कुछ लिखा हुआ है। कोल समुदाय की वारंचिती लिपि के बारे में यह कहा जाता है की इस लिपि के आविष्कारक कोल गुरु लोको बदरा है। परंतु यह अर्ध सत्य प्रतीत होता है क्यों की कोल गुरु लोकों बदरा जी का जन्म 9.9.1919 को माना जाता है। और लिपि का अविष्कार 1957 में रेलवे नौकरी करने के दौरान किए। परन्तु सैमुअल रिचर्ड टिकले द्वारा रचित "द ग्रामार एंड कंस्ट्रक्शन हो ऑफ हो लैंग्वेज" जो 1840 में प्रकाशित हुआ है वही वे कोल समुदाय के "वरंगचिति" लिपि के बारे में लिखते हैं। इसका अर्थ यही हुआ की "वरंगचिति " लिपि कि अस्तित्व बहुत पहले से था और कोल गुरू लोको बदरा जी ईसे पुन: प्रचारित ,प्रसारित करने के लिऐ अहम कदम उठाए थे।

कोल भाषा और लिपि प्राचीन सिंधु घाटी के ये शब्द (सिन्दु गाटो, मेंजोदेइ-हो (मोहन जोदड़ो), हो-रप्पाः (हड़प्पा),आजोम गड़ा (आजोम गढ़), चन्दु दइ हो (चान्दु दड़ो), मान्दा (मांदा), सुरकोदः(सुरकोतदा), रो-पड़ा (रापड़), हिसिर (हिसार), एवं लो-तला (लोथल) आदि स्थानों के ये "हो"भाषा और वरांचीती लिपि में काफी नजदीक पाया जाता है साथ ही आदिवासी की प्राचीन निवास की सत्यता की प्रमाणिकता के साथ दर्शाया गया है।सिन्दु गाटो, में जोदइ हो एवं हो-रप्पाः में हो आदिवासी की समृद्ध भाषा,वैज्ञानिक लिपि, विकसित साहित्य, उन्नत कृषि एवं उन्नत व्यापार तथा हो आदिवासी ("हो" अनार्य) एवं आर्य (दिकु) के साथ युद्ध की विभिषिका और युद्ध में 'हो' ("हो" अनार्य) की पराजय एवं दाह-संस्कार की इतिहासिक घटना को प्रस्तुत किया गया है |"हो" आदिवासी की पारम्परिक देशज मानकी-मुण्डा प्रशासन व्यवस्था की मौलिकता हो समाज में मानकी-मुण्डा का अस्तित्व एवं हुकुमनामा में दर्ज मानकी-मुण्डाओं के अधिकारों का उल्लेख किया गया है|

इस प्रकार हम देखते हैं कोल देवलोक के अपने प्राचीन संस्कृति,सभ्यता,भाषा ,लिपि, सब कुछ है परंतु समय के साथ यह लिखित रूप से दर्ज नहीं हो पाया है शायद यही कारण है कि आज इस कोल समाज को हसियों पर देखा जाता है। "कोल देवलोक" में पूजा और त्योहार का महत्वपूर्ण भूमिका है। इस पारंपरिक अनुष्ठान के माध्यम से अभी तक अपने संस्कृति को बचा के रखें हैं।भाई चारा अभी भी है।उनकी स्वशासन व्यवस्था अभी भी समाज में लोगों को नई राह दिखा रही है।परंतु कोल देवलोक की संस्कृति ,उनकी विरासत ,उनकी परंपरा में गूढ़ रहस्य चुपाभुआ है। गूढ़ दर्शन छुपा हुआ है। मानव सभ्यता प्रति संवेदना छिपा हुआ है जो अपने आपको महान साबित करता है।

संपर्क :
रुद्र चरण माझी
शोधार्थी,हिन्दी विभाग
दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गया, बिहार
मो: **9937218920 ,7008237031**